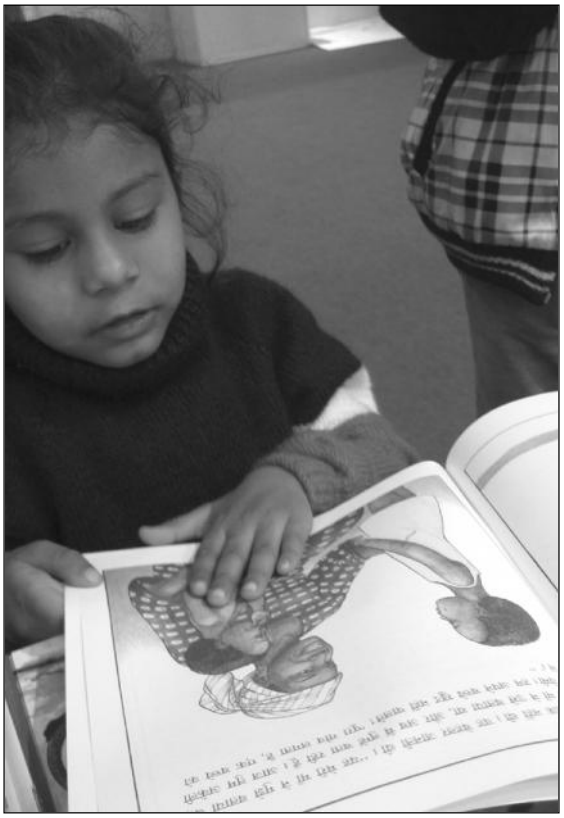

बच्चों के लिए किताबें चुनना

अविनन्दन मुखर्जी

अपनी पुरस्कृत किताब, *द लिटिल बुकरूम* की भूमिका लिखते हुए एलेनॉर फार्जन अपने बचपन के घर की धूल भरी छोटी-सी जादुई अटारी का वर्णन करती हैं जो किताबों और मकड़ियों के जालों से भरी रहती थी और जहाँ कभी-कभार छन-छनकर धूप आया करती थी। फार्जन के अनुसार इस अटारी और इसकी किताबों से प्रेरणा पाकर ही उनकी पढ़ने-लिखने की यात्रा की शुरुआत हुई जो जीवन-पर्यन्त चलती रही। लेकिन हममें से अधिकांश लोग फार्जन जितने सौभाग्य-शाली नहीं होते जिन्हें बचपन में तमाम खजानों से भरा 'छोटा पुस्तकों का कमरा' मिलता हो। या तो हम किताबों को कमरों में बहुत ऊपर रखे, चमड़े की जिल्द चढ़े ग्रन्थों के रूप में देखते

हैं या फिर वे हमें बड़े भाई-बहनों के इस्तेमाल में आने वाली और उपयोगी पुरानी स्कूली डायरी या पुरानी स्कूली पाठ्यपुस्तकों के रूप में दिखाई देती हैं जिन्हें घर के किसी अँधेरे कोने में ढेर लगाकर पटक दिया जाता है ताकि उन्हें रद्दी में बेचा जा सके।

पालकों की निगहबानी

शायद आजकल स्थितियाँ बेहतर हैं, क्योंकि बहुत-से माता-पिता अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई में गहरी रुचि ले रहे हैं। पर इसके बावजूद, सवाल तो वही है कि आखिर कितने बच्चों को वे किताबें पढ़ने दी जाती हैं, जो वे पढ़ना चाहते हैं, बजाय कि उन किताबों को जो उन्हें ज़बरदस्ती पढ़ना पड़ती हैं। मुझे अपने बचपन की एक मित्र याद है जिसके माता-पिता उन कहानियों की किताबों को आम तौर पर छुपा दिया करते थे जो उसे जन्मदिन पर उपहार स्वरूप मिलती थीं, क्योंकि उन्हें यह चिन्ता रहती थी कि इन किताबों की वजह से वह अपने स्कूल की पाठ्यपुस्तकों पर ध्यान नहीं देगी। ऐसे माता-पिता भी होते हैं जो अपने बच्चे के लिए हर पुस्तक खुद चुनने पर आमादा रहते हैं, हालाँकि अक्सर इस वजह से वे किताबों की दुकान पर ऐसे प्रश्न पूछते दिखते हैं, "कृपया 10 साल के बच्चे के लिए कोई उपयुक्त किताब दे दीजिए।" और बच्चा जो कुछ भी पढ़ने के लिए उठाता है उसे पहले माता-पिता/अभिभावकों की कड़ी निगाहों से गुज़रना पड़ता है।

पिछले साल नवम्बर में मुझे दिल्ली में लगे बाल पुस्तक मेले में जाने का

मौका मिला और जिस दौरान मैं किताबों के पन्ने पलट रहा था, इस तरह की बातें लगातार मेरे कानों में पड़ती रहीं, "बेटा, तुम इस किताब को पढ़ने के लिहाज़ से बहुत बड़े/छोटे हो", "इस किताब में बहुत ज़्यादा पाठ्य सामग्री/चित्र हैं", "जब मैं तुम्हारी उम्र का था तो मुझे यह किताब बड़ी प्रिय थी!", "तुम्हें बस यह किताब खरीदने की पड़ी है, मुझे मालूम है तुम कभी इसे पढ़ोगे नहीं!" ऐसे अवसरों पर मैं सोचने पर मजबूर हो जाता हूँ कि इस तरह की बौद्धिक निगरानी के पीछे क्या कारण हो सकते हैं। इसका प्रमुख कारण तो निश्चित ही माता-पिता का यह स्थाई डर है कि कहीं उनका बच्चा कोई 'अनुपयुक्त' चीज़ न पढ़ ले। लेकिन अगर उनसे उपयुक्त सामग्री को चुनने के उनके दिशा-निर्देशों के बारे में पूछा जाए (और मैंने पूछा है) तो आम तौर पर बड़े अस्पष्ट उत्तर मिलते हैं। तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि बच्चों के लिए किताबें चुनने का यह पूरा कारोबार इन दो धारणाओं पर आधारित है - पहली, पालक ही 'जानते' हैं कि उनके बच्चे के लिए क्या सही है; दूसरी, यह इस तथ्य को जताने का एक तरीका है कि माता-पिता को हमेशा यह तय करने का अधिकार होता है कि उनके बच्चे के जीवन व दिमाग में क्या होना चाहिए, और उसकी पढ़ाई-लिखाई कैसी होना चाहिए? क्या हम वाकई इस पहेलीनुमा धारणा को स्वीकार कर सकते हैं कि 'माता-पिता सब जानते हैं'?

बच्चों को मिले आज़ादी

पालकों का ऐसा व्यवहार कोई चिन्ता का विषय नहीं होता अगर वे सिर्फ बहुत छोटे बच्चों के मामले में

ऐसा कर रहे होते, पर दुर्भाग्यवश कई माता-पिता अक्सर यह भूल जाते हैं कि बच्चा बड़ा हो रहा होता है, और उम्र के साथ, उसे यह तय करने की छूट मिलना चाहिए कि वह क्या पढ़ना चाहता/चाहती है। इस तरह माता-पिता (अक्सर अनजाने में) बच्चे को ऐसा प्रतिनिधि बना देते हैं जिसके माध्यम से वे अपनी अधूरी आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को पूरा करने में लगे रहते हैं, और यह प्रवृत्ति खतरनाक है क्योंकि इस तरह बच्चा अक्सर अपने माता-पिता की अतृप्त ज़िन्दगी को ही जीता रहता है! इससे भी खराब बात यह है कि इन सबके चलते अक्सर बच्चे हमेशा के लिए किताबों से मुँह फेर लेते हैं, भले ही किसी समय उन्हें किताबें पढ़ना अच्छा लगता रहा हो।

वक्त आ गया है कि माता-पिता इस तरह के बहाने बनाना बन्द करें कि किताबों से चरित्र-निर्माण होता है, और नैतिक कहानियों के माध्यम से बच्चे ईसप और विष्णु शर्मा के समय से मनुष्यों को प्राप्त हुए अनुभवों से सीख हासिल करते हैं। वास्तव में, बहुत थोड़े 'समझदार' बच्चे ऐसे होते हैं जो इन उपदेशात्मक कहानियों की शुरुआत में किसी चौखाने के अन्दर लिखे गए या मोटे अक्षरों में लिखी गई नैतिक सीखों को पढ़ने की परवाह करते हैं। आम तौर पर तो उनकी रुचि यह पता लगाने में कहीं अधिक होती है कि कहानी के अन्त में चालाक लोमड़ी या भले किसान का क्या होता

है। आखिरकार, बहुत कम बच्चे ऐसे होते हैं जो दूसरों के अनुभवों से कभी कुछ सीखते हैं। और ऐसी अपेक्षा करना भी हमारी मूर्खता है, खासतौर से तब जब हम बड़े लोग खुद अपनी गलतियों और अनुभवों से नहीं सीखते!

और यह धारणा भी एक खतरनाक भ्रम है कि सबको पढ़ना चाहिए! आज के बच्चों की पढ़ने की आदतों पर होने वाली कोई भी बहस आम तौर पर बहुत हद तक इन बातों के इर्द-गिर्द ही घूमती है कि किस तरह टेलीविज़न, इंटरनेट, कम्प्यूटर गेम्स जैसी ध्यान भटकाने वाली चीज़ों के कारण बच्चे को पढ़ने की आदत नहीं डल पाती। हमें वाकई सांस्कृतिक और ऐतिहासिक, दोनों रूपों से इस मान्यता की पड़ताल करनी चाहिए।

एक इंटरव्यू में रस्किन बॉण्ड बताते हैं कि उनके बचपन में तो ध्यान भटकाव के दो ही रूप थे, एक, रेडियो और दूसरा, दूर-दराज़ के किसी सिनेमा हॉल में यदा-कदा कोई अँग्रेज़ी फिल्म देख लेना, फिर भी उनकी कक्षा में कुल जमा तीन या चार लड़के ही ऐसे थे जिन्हें किताबें पढ़ना अच्छा लगता था। यह उन तमाम अति-उत्साही व्यग्र माता-पिताओं के लिए बहुत अच्छी सलाह हो सकती है जो यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि उनके बच्चों को पढ़ने की आदत डल जाए। हमें अपने बच्चों पर ज़बरदस्ती किताबें थोपना बन्द कर देना चाहिए। हमें चाहिए कि उन्हें किसी छोटे-से पुस्तक-कक्ष में स्वतंत्र छोड़ दें ताकि वे अपने मन की किताब चुन सकें और उन्हें स्वीकृति के लिए अपने माता-पिता के चेहरों को न देखना पड़े। और साथ ही इस कक्ष का दरवाज़ा भी खुला छोड़ देना चाहिए ताकि बच्चा जब चाहे बाहर आ सके और जब चाहे दोबारा भीतर जा सके।

अन्त में यह कहना चाहूँगा कि, क्या यह बात सही नहीं है कि पढ़ने की आदत को लेकर हम कुछ ज़्यादा ही उपदेश देते हैं? क्या हमने कभी इस बात पर ध्यान दिया है कि जब हम यह मान लेते हैं कि किसी मिट्टी के ढेले से कुछ बनाने की कोशिश करने, या कम्प्यूटर पर स्ट्रैटेजी गेम्स खेलने की तुलना में पढ़ने की आदत ज़्यादा लाभदायक होती है, तो हम अपने पक्षपातों और पूर्वाग्रहों को जता रहे होते हैं?

अविनन्दन मुखर्जी: बाल साहित्य में रुचि रखते हैं। 'इंडियन प्रिंटर एंड पब्लिशर' पत्रिका के साथ काम कर रहे हैं। दिल्ली में रहते हैं।
अँग्रेज़ी से अनुवाद: भरत त्रिपाठी: पत्रकारिता का अध्ययन। स्वतंत्र लेखन और द्विभाषिक अनुवाद करते हैं। होशंगाबाद में निवास।
सभी फोटोग्राफ: एकलव्य विश्व पुस्तक मेला टीम।

■ ■ ■ ■ ■